



रामधारी सिंह दिनकर

सलिल कण हूँ, या पारावार हूँ मैं  
स्वयं छाया, स्वयं आधार हूँ मैं  
बंधा हूँ, स्वपन हूँ, लघु वृत हूँ मैं  
नहीं तो व्योम का विस्तार हूँ मैं

समाना चाहता है, जो बीन उर में  
विकल उस शुन्य की झनकार हूँ मैं  
भटकता खोजता हूँ, ज्योति तम में  
सुना है ज्योति का आगार हूँ मैं

जिसे निशि खोजती तारे जलाकर  
उसी का कर रहा अभिसार हूँ मैं  
जनम कर मर चुका सौ बार लेकिन  
अगम का पा सका क्या पार हूँ मैं

कली की पंखुड़ी पर ओस-कण में  
रंगीले स्वपन का संसार हूँ मैं  
मुझे क्या आज ही या कल झरूँ मैं  
सुमन हूँ, एक लघु उपहार हूँ मैं

मधुर जीवन हुआ कुछ प्राण! जब से  
लगा ढोने व्यथा का भार हूँ मैं  
रुंदन अनमोल धन कवि का, इसी से  
पिरोता आंसुओं का हार हूँ मैं

मुझे क्या गर्व हो अपनी विभा का  
चिंता का धूलिकण हूँ, क्षार हूँ मैं  
पता मेरा तुझे मिट्टी कहेगी  
समा जिसमें चुका सौ बार हूँ मैं

न देखे विश्व, पर मुझको घृणा से  
मनुज हूँ, सृष्टि का शृंगार हूँ मैं  
पुजारिन, धुलि से मुझको उठा ले  
तुम्हारे देवता का हार हूँ मैं

सुनूँ क्या सिंधु, मैं गर्जन तुम्हारा  
स्वयं युग-धर्म की हुंकार हूँ मैं  
कठिन निर्घोष हूँ भीषण अशनि का  
प्रलय-गाड़ीव की टंकार हूँ मैं

दबी सी आग हूँ भीषण क्षुधा का  
दलित का मौन हाहाकार हूँ मैं  
सजग संसार, तू निज को समूहले  
प्रलय का क्षुब्ध पारावार हूँ मैं

बंधा तुफान हूँ, चलना मना है  
बंधी उद्याम निर्झर-धार हूँ मैं  
कहूँ क्या कौन हूँ, क्या आग मेरी  
बंधी है लेखनी, लाचार हूँ मैं ।।



# भारतीय लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता व अल्पसंख्यकवाद

आप चाहे बस में सफर कर रहे हों, अथवा ट्रेन या हवाई जहाज में, अपने सहयात्री से आम तौर पर तीन सवाल पूछते हैं- आपका नाम क्या है, कहां से आ रहे हैं, अब कहां जायेंगे। दुनिया में हर जगह यही सवाल एक दूसरे से पूछे जाते हैं। यही व्यक्तिगत सवाल आपको राष्ट्र के रूप में भी पूछना चाहिए, अपने आप से भी और दूसरों से भी। इतिहासकारों की बातों पर मत जाइये, जो कहते हैं कि हमारी सभ्यता 5000 साल पुरानी है, हमारी सभ्यता इससे कहीं बहुत अधिक प्राचीन है।

जिन दिनों मैं किंग्स कॉलेज इंग्लैंड में पढ़ रहा था, मैंने दहशतगर्दी कैसे खत्म हो, इसको लेकर एक पुस्तक लिखी थी। 60 के दशक में कोरिया में जंग हुई, जो बेनतीजा रही। कई बार लड़ाइयां समझ विकसित होने पर अपने आप खत्म हो जाती हैं। जैसे कि इंडोनेशिया में हुआ। जिहादियों को वहां आई जबर्दस्त सुनामी का कहर देखने के बाद समझ में आया कि वे फिजूल लड़ रहे थे और वहां शान्ति आ गई। जबकि 1971 में हमारी बांग्लादेश युद्ध में निर्णायक विजय हुई, जोकि बहुत कम युद्धों में होती है, किन्तु युद्ध समाप्त नहीं हुआ।

1930-40 के दशक में कुछ सवाल पैदा हुए। हमारे पुरखों को लगा कि देश की जमीन का एक टुकड़ा मुस्लिमों को दे देने से जंग खत्म हो जायेगी। पर वह खत्म हुई क्या?

मक्का में गैर मुस्लिमों ने प्रोफेट मोहम्मद से कहा कि आप और हम मक्का में साथ साथ रह सकते हैं, किन्तु मोहम्मद ने कहा यह नहीं हो सकता, आपका धर्म अलग है, रहन-सहन अलग है, हम साथ नहीं रह सकते। और यही से द्वि राष्ट्र सिद्धांत का जन्म हुआ। वहां अब कोई जू नहीं बचे, कोई यहूदी नहीं बचे। अफगानिस्तान में, बलूचिस्तान में, पाकिस्तान में कहीं हिन्दू नहीं बचे। लाहौर सिक्ख महानगर था, अब नहीं है। वही क्रम आज भी जारी है। कश्मीर में, कैराना में, केरल में, प. बंगाल के मालदा में क्या हो रहा है?

**मेरे पास केवल सवाल हैं, जबाब नहीं।**

हमें बताया जाता है कि 47 में, 65 में, 69 में 71 में, कारगिल में हमने पाकिस्तान को हराया। यह सफेद झूठ है। फौज ने लड़ाइयां जीतीं, पर राजनीतिज्ञ जीती जंग हार गए। 47 में गिलगित बाल्टिस्तान हमने पाकिस्तान को सौंप दिया, 65 में जीता हुआ हाजीपीर वापस कर दिया। जरा सोचिये कि ये हमारे पास होते तो हमारे ट्रक यूरोप तक फरॉटे भर रहे होते। 71 में तो 930000 पाकिस्तानी फौजी बंदी बिना बारगेन किये वापस कर दिए। मनमोहन की सरलता तो देखिये कि वे तो पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर स्थाई रूप से पाकिस्तान को सौंपकर शान्ति लाने को सहमत हो गए थे।

एपीजे अब्दुल कलाम ने कहा था कि सिकंदर, मुगल, डच, अंग्रेज सब आये और हमें लूटकर चले गए, हम इतने अच्छे थे कि हमने चुपचाप सबको सहन किया, कई बार तो आमंत्रित भी किया कि आओ और हमको लूटो। जरा सोचिये कि महमूद गजनवी ने हम पर सत्रह बार हमला किया और हमने उसे पराजित किया, किन्तु क्या एक बार भी उसका पीछा कर उसे सबक सिखाया। हर बार एक हमले के बाद दूसरे हमले का इंतजार करते रहे।

एक और सवाल? हमारे यहां गाजीपुर है, गाजियाबाद है। कभी सोचा ये गाजी क्या है? गाजी वह जो जंग में जीतता

है। यह नाम क्या सिद्ध करते हैं? क्या यह गुलामी की मानसिकता नहीं है? यह विचारों का सफर है, मैं कोई निर्णय नहीं दे रहा हूँ, केवल सवाल उठा रहा हूँ।

सुप्रीम कोर्ट ने शाहबानो के पक्ष में फैसला दिया, वह कौन सी मानसिकता थी, जिसने अधिकांश एमपी को अपने कब्जे में लेकर कानून बदला। इस्लाम में औरत हेड ऑफ स्टेट नहीं हो सकती, कोई गैर मुस्लिम भी हेड ऑफ स्टेट नहीं हो सकता। अतः अगर पाकिस्तान या सऊदी अरब ऐसे कानून बनाए, तो समझ में आता है, किन्तु भारत में?

आस्ट्रेलियन अर्थ शास्त्री एके हाईक ने लिखा है कि बुद्धिजीवी समाज के हिसाब से नहीं स्वयं के हिसाब से तर्क गढ़ता है। भारतीय लोकतंत्र ने 2014 में एक नई बुद्धिजीवी जमात पैदा की, जिसने लाइन में लगकर वोट के माध्यम से



तुफैल अहमद

tufaillelif@yahoo.co.uk

एक नया तंत्र पैदा कर दिया। बस फिर क्या था पुराने बुद्धिजीवियों की हालत जमीन पर रखी हुई मछली जैसी हो गई। उनकी तड़पन देखने लायक थी, उन्होंने कहा देश में असहिष्णुता आ गई है। अवाई वापसी शुरू हो गई। 19 अक्टूबर को बीएसपी की लखनऊ रैली में कुरआन खानी हुई। उसके पहले राहुल जी मंदिरों में, दारुल उलूम देववद में गए। यह मानसिकता क्या है?

47 के पहले तक आजादी की लड़ाई में हिन्दू मुसलमान साथ-साथ थे। हामिद दलवाई राष्ट्रवादी मुसलमानों में अग्रणी थे, किन्तु दुर्भाग्य से अल्पायु में ही उनका निधन हो गया। सर सैयद अहमद खान ने अलीगढ़ में मुसलमानों के लिए वैज्ञानिक शिक्षा का खाका खींचा, किन्तु बाद में दोनों मामलों में अलगाव वाद पनप गया। हिन्दुओं ने भी उसे बढ़ावा ही दिया। 1960 से 80 के दशक तक कांग्रेस दंगे करवाती रही, उसके बाद बीजेपी ने भी करवाए। फिर औरत की चर्चा शुरू हुई। मुस्लिम को इंगेज करके रखा गया।

**यही है अल्पसंख्यकवाद और धर्म निरपेक्षता**

कहा जाता है कि जिसकी संख्या कम वह अल्पसंख्यक, किन्तु यह सही नहीं है। दक्षिण अफ्रीका में काले बहु संख्यकों पर हुकूमत गोरे अल्पसंख्यक करते हैं। 1950 में हमारे यहां पार्लियामेंट पद्धति शुरू हुई। 52 के पहले चुनाव में ही 65 प्रतिशत सांसदों को 50 प्रतिशत से कम वोट मिले। इसके बाद के चुनावों में तो 25 प्रतिशत और 17 प्रतिशत वोट पाकर भी लोग चुनाव जीतते रहे। यही कारण है, जिसके चलते माईनोरिटी का विचार बढ़ता जा रहा है। माईनोरिटी का आधार होना चाहिए केवल गरीबी।

जब देश के सभी कोलेजों में मुस्लिम आजादी से पढ़ सकते हैं, तो फिर उनके लिए अलग अलीगढ़ मुस्लिम

विश्वविद्यालय क्यों? प्रत्येक राजनैतिक दल को भी अपने अपने अल्पसंख्यक प्रकोष्ठ समाप्त कर देने चाहिए। सिक्ख अपने आप को माईनोरिटी नहीं मानते, पारसी नहीं मानते। मुस्लिमों में यह मानसिकता राजनीति ने पैदा की है।

सेक्यूलरिज्म का अर्थ क्या? धर्म के प्रभाव को न्यून कर वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देना। हमारे संविधान के अनुसार कहे तो भारतीय राज किसी मजहब को सपोर्ट या अपोज नहीं करेगा। तीसरा आज का व्यवहारिक राजनैतिक सोच कि हर मुसलमान पाकिस्तानी है। नीतीश कुमार चुनाव पूर्व पाकिस्तान जाते है, बिहार के मुसलामानों को यह जताने के लिए कि, देखो मैं पाकिस्तान जा रहा हूँ, तुम पाकिस्तानी हो, इसलिए मुझे वोट देना। और आंकड़े बताते हैं कि 84 प्रतिशत मुस्लिम वोट उन्हें मिले।

मुम्बई में पाकिस्तानी गायक गुलाम अली का कार्यक्रम शिवसेना नहीं होने देती तो अखिलेश यादव और केजरीवाल उन्हें बुलाते हैं। वे हिन्दुस्तानी एआर रहमान को नहीं बुलायेंगे। ममता बैनर्जी खौफनाक उर्दू बोलती है, लेकिन बंगलादेशी तसलीमा नसरीन के पक्ष में आवाज नहीं निकालती। ये लोग केवल पाकिस्तानी हैं, बंगलादेशी भी नहीं हैं। यह मानसिकता भारतीय मुसलमानों के लिए भी खतरे की घंटी है। परिवर्तन केवल नए विचारों के संपर्क में आने पर ही आता है। मेरी गोवा में जमीयत उलेमा ए हिन्द के मौलाना महमूद मदनी से बातचीत हुई। मैंने कहा कि इस्लाम नहीं बदलेगा, शरीया भी नहीं बदलेगी, लेकिन मुसलमान बदल सकता है। ट्रिपल तलाक मुद्दा नहीं है, मुद्दा है औरतों के साथ होने वाली नाईसाफी। मैंने उनसे कहा यूनीफोर्म सिविल कोड अर्थात सभी भारतीयों के लिए समान कानून। वह कानून आप स्वयं सुझाएं कि क्या होना चाहिए। वे उसके लिए भी तैयार नहीं हुए। इसे क्या कहा जाए? बिना सोचे समझे विरोध।

**हमारे यहां की दहशतगर्दी के तीन प्रमुख कारण हैं-**

जब तक पाकिस्तान जिंदा है, तब तक वहां की फौज आतंक को समर्थन जारी रखेगी।

बांग्लादेश से भी हमें ऐसी ही चुनौती का सामना करना पड़ेगा।

मिडिल ईस्ट से प्रभावित युवा।

इससे निबटने के उपाय खोजने होंगे। हिन्दू मुसलमान भारतीय बनकर रह सकें ऐसी व्यवस्था बनानी होगी। जिनके पास बीपीएल कार्ड उन सबके बच्चों को निःशुल्क उच्च शिक्षा। हम कौन हैं, इसे बताने वाली पाठ्यपुस्तकों की श्रंखला का निर्माण, जिसमें हर धर्म की जानकारी हो। बच्चों के दिमाग का विस्तार होगा।

लगभग सवा अरब की भारतीय आबादी में 55 प्रतिशत युवा हैं, जिन्होंने न आजादी की लड़ाई देखी है, और न ही आपातकाल की विभीषिका। ये वे लोग हैं, जिन्होंने खुली आजादी की हवा में सांस ली है। हम लोग मैकाले की शिक्षा पद्धति को दोष देते हैं। लेकिन जरा सोचिये कि अगर मैकाले कर सकता था तो भारतीय लोकतंत्र शिक्षा पद्धति में बदलाव लाकर उससे अच्छा क्यों नहीं कर सकता?

**(लेखक मिडिल ईस्ट मीडिया रिसर्च इंस्टीट्यूट, वाशिंगटन डीसी में साउथ एशिया स्टडीज प्रोजेक्ट के डायरेक्टर हैं)**